* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १५ | गौराब्द ४८४, मास--मधुसूदन २३, वार--कारणोदशायी, बृहस्पतिवार, ३० वैशाख, सम्वत् २०२७, १४ मई १९७० | संख्या १२

मई १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

वृत्रासुरकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ६।११।२४-२७)

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भविताऽस्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणानां गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

जब इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध चल रहा था, उस समय वृत्रासुर इन्द्रको सम्बोधन हुए भगवान श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हैं--हे हरे ! मेरा वह कब शुभ दिन होगा, जबमैं तुम्हारे पादपद्मोंके ऐकान्त आश्रित भक्तोंका, जिन्होंने एकमात्र तुम्हारे पादपद्मोंको ही सार जाना है, दास होनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकूँगा ? मेरी आपके चरणोंमें यही प्रार्थना है कि मेरा मन आप प्राणनाथकी गुणावलीका ही सर्वदा स्मरण करें, मेरी वाणी सर्वदा ही तुम्हारी गुणावलीका कीर्त्तन करें और शरीर भी सर्वदा ही तुम्हारे सेवा-कार्यमे ही नियुक्त रहें ॥२४॥

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वां विरहय्य कांक्षे ॥२५॥

हे सर्वसौभाग्यनिधे ! हे सर्वसमर्थ ! मैं आपके विरहमें, अत्यन्त कातर हो रहा हूँ । मैं आपको छोड़कर और कुछ नहीं चाहता । मेरा मन आपके माधुर्यसे इतना आकृष्ट हो गया है कि मुझे स्वर्ग या ध्रुवपद, ब्रह्माकी पदवी, पृथिवीका एकछत्र आधिपत्य, रसातलका आधिपत्य, अणिमादि अष्टसिद्धियाँ या अपुनरागमन (जिससे जन्म-मृत्यु न हो, ऐसी अवस्था) युक्त ब्रह्म-सायुज्य मुक्तिकी लेशमात्र इच्छा नहीं रह गयी है ॥२५॥

अजातपक्षाः इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः ॥

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषन्ना मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

हे कमललोचन वाले श्रीकृष्ण ! जिस प्रकार अजातपक्ष (जिनके पंख नहीं निकले हैं, ऐसे) पक्षि-शावक अपनी माताके आगमनके लिए अत्यन्त आतुर रहते हैं, रस्सीमें बन्धे हुए बछड़े जिस प्रकार भूखद्वारा पीड़ित होकर अपनी माताका स्तन्य पान करनेके लिए तड़फते रहते हैं, विरहकातरा प्रियतमा पत्नी जिस प्रकार दूरदेशस्थित पतिके दर्शनों तथा मिलनके लिए अत्यन्त अभिलाषयुक्त होती है, उसी प्रकार मेरा मन भी एकमात्र तुम्हारे दर्शनों तथा मिलनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो ॥२६॥

ममोत्तमःश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।

त्वन्मायया त्मात्मजदारगेहष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

हे नाथ ! मैं अपने कर्मोंके वशीभूत होकर इस संसार-चक्र (बार-बार जन्म-मृत्यु रूपी चक्र) में भ्रमण कर रहा हूँ । हे प्रभु ! यदि मुझे कर्मवश पुनः जन्म ग्रहण करना पड़े, तो मैं आपसे केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जन्म-जन्ममें आपके उत्तमकीर्त्तिके गान करनेवाले परमभागवत भक्तजनोंका सङ्ग और मित्रता प्राप्त हो । वर्त्तमान अवस्थामें जिस प्रकार मेरे चित्तमें देह, पुत्र, परिवार, बन्धुजन तथा गृहादिके प्रति आसक्ति हो गयी है, ऐसी आसक्ति और नहीं रहे ॥२७॥

॥ इति वृत्रासुरकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् समाप्तम् ॥

॥ इति वृत्रासुरकृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

श्रीगोविन्द

महाप्रसादे गोविन्दे नाम-ब्रह्मणि वैष्णवे ।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो न जायते ॥

वर्त्तमान समयमें 'महाप्रसाद', 'गोविन्द', 'नाम' और 'वैष्णव'—इन चारों वैकुण्ठ या अप्राकृत वस्तुओंमें हम लोगोंने विश्वास खो दिया है। अतएव नाना प्रकारके अनर्थोंने हमें अपना ग्रास बना लिया है। 'महाप्रसाद', 'गोविन्द', 'नाम' और 'वैष्णव'—ये चारों वस्तुएँ अभिन्न विष्णुस्वरूप हैं। किन्तु हम लोग इस मायाके जगत—पापके राज्यमें आए हुए हैं; अतएव वस्तुविज्ञानमें हमारा विश्वास नहीं रहा। माया का तात्पर्य है—'मीयते अनया इति माया' अर्थात् जिसके द्वारा मापा जा सके। किन्तु ये चारों वस्तुएँ मापे जाने योग्य वस्तुएँ नहीं हैं। वैष्णवको हम लोग माप नहीं सकते। अतएव शास्त्रोंमें कहा गया है—'वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह ना बुझय।' हम लोग कई समय भगवान् श्री-गोविन्दको भी माप लेना चाहते हैं। यहाँ मुख द्वारा वैकुण्ठ ('कुण्ठा' अर्थात् मायिक धर्म जिसमें तिरोहित हो गया है या अप्राकृत) कहते हैं किन्तु उसे माप लेनेके लिए संकल्प कर लेते हैं। हम लोग जिस शाखापर बैठे हैं,उसीको काट देना चाहते हैं।

चतुः सीमायुक्त वस्तुको मापा जा सकता है। किन्तु 'गोविन्द' आदि चारों वस्तुएँ ऐसी ससीम-जातीय वस्तुएँ नहीं हैं। वैकुण्ठ वस्तुको मापनेकी धृष्टता करनेसे वह अकुण्ठ वस्तुको कुण्ठ-धर्ममें प्रवेश करानेकी चेष्टामात्र हुई। अतएव सात्वत शास्त्रोंका कहना है—ये सभी वस्तुएँ ही अधोक्षज वस्तुएँ हैं, स्वतन्त्र और स्वराट् वस्तुएँ हैं; दूसरेके द्वारा लालित-पालित होकर संवर्द्धित नहीं होते। 'श्रीगोविन्द' स्वतःप्रकाश 'चिदुदय' वास्तव वस्तु हैं, दूसरोंके प्रकाशसे उनको देखनेकी आवश्यकता नहीं होती।

'गां विन्दति इति गोविन्दः।' 'गो' का अर्थ है विद्या, इन्द्रिय, पृथिवी, गाय आदि-आदि। ईशोपनिषद्में कहा गया है—"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयु-नानि विद्वान्। पुयोद्दयस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।"

इन सभी वेदोक्त स्तवोंमें हमारी इन्द्रिय-तर्पणोपयोगिनी वस्तुकी धारणामें गोविन्दके बाहरी दिशाका मुख वर्णित हुआ है। इन सभी स्तवोंद्वारा हम लोग गोविन्दके विभे-दांशकी बात—कुण्ठ धर्मकी बात समझकर हमारे इन्द्रियज-ज्ञानकी परितृप्ति करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु वे स्वतन्त्र हैं। वे पाँच रूपोंमें प्रकाशित होते हैं—१) स्वरूप या स्वयंरूप, २) परस्वरूप, ३ वैभवस्वरूप, ४) अन्तर्यामीस्वरूप और ५) अर्चा-स्वरूप।

(१) स्वरूप या स्वयंरूप

स्वरूप या स्वयंरूप ही व्रजेन्द्रनन्दन हैं। उनका रूप नश्वर परिवर्त्तनीय रूप नहीं है या काल्पनिक नहीं है। वे हमारे विचार या धारणा द्वारा उत्पन्न एक द्रव्यविशेष नहीं हैं। वे स्वतःस्वरूप विशिष्ट हैं। "साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप-कल्पनम्" - मनोधर्मियोंका ऐसा काल्पनिक विचार स्वतःसिद्ध-स्वरूप-विशिष्ट अधोक्षज-वस्तु गोविन्दके लिए कदापि प्रयोग करने योग्य नहीं है। गोविन्द ही समस्त बहिःप्रज्ञा-ग्राह्य देवताओंके पोषण करनेवाले हैं। उन्होंने ही अग्निको दाहिका-शक्ति, सूर्यको तेजः-शक्ति, वरुणको जल-शक्ति, वायुको वायु-शक्ति आदि अधिकार प्रदान किया है। वे ही सभीके मूल परात्पर-वस्तु हैं। श्रीब्रह्मसंहितामें गोविन्दको ही परमेश्वर', 'सर्वकारण-कारण', 'आदि', 'अनादि' आदि कहा गया है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

कालकी सृष्टि होनेके पहले गोविन्द वर्तमान थे या गोविन्दद्वारा ही कालकी सृष्टि हुई है। किन्तु हम लोग कई समय 'विवर्त्त-वादी' होकर सोचते हैं—कालके भीतर गोविन्द सृष्ट हुए हैं। कभी-कभी हम लोग विचार करते हैं—हमारे इन्द्रियज्ञानज सामाजिक कारखानेमें गोविन्दको दया कर हम लोगोंने बनाया है। 'हमारे कारखानाके गोविन्द'—'हमारे मनके साँचेमें बनाये गोविन्द'—प्रकृत या यथार्थ अधोक्षज-गोविन्द या स्वरूप तत्वके साथ एक नहीं हैं। हमारे काल्पनिक विचारद्वारा हम लोग गोविन्दके श्रीविग्रहको कलङ्कित नहीं कर सकते। वे स्वतन्त्र हैं। काल उन्हें ग्रास नहीं कर सकता। उनसे ही काल उत्पन्न होकर उनको छोड़कर उनके बहिरङ्ग-प्रसूत अन्यवस्तुका स्वरूप प्रकाश करता है। अधोक्षज गोविन्द जीवके मनःकल्पित वस्तु नहीं हैं (not a concoction of human mind)। गोविन्द ही एकमात्र परमेश्वर अधोक्षजवस्तु हैं। यही सत्य है अर्थात् गोविन्द ही नित्य चिन्मयविग्रहस्वरूप हैं। अतएव जड़ेन्द्रियज-ज्ञानसे दृश्य-जगतका अन्यतम वस्तु कहकर अचित् की हेयता, जड़-की जाड्यता और अस्वतन्त्रता स्वराट् गोविन्दके पादपद्मोंमें आरोपित नहीं की जा सकतीं। यह नित्यसत्य जिन्होंने हमें दिव्यज्ञान देकर बतला दिया है, वे ही हमारे परमहित-कारी दिव्य-कृष्णज्ञान-प्रदाता वैष्णव-प्रधान ही श्रीगुरुदेव हैं।

यह जड़जगत गोविन्दसे विच्छिन्न है। अक्षजज्ञानके अभ्यन्तरमें गोविन्द ही अन्तर्यामी रूपसे आवृत होकर अवस्थित हैं। वेदोक्त बहुतसे देवता जड़ेन्द्रियोंके अगोचर आवृत-विष्णुके जीवेन्द्रियोपयोगी बाहरी परिचय ही प्रदान करते हैं। जब हम लोग वित्तैषणा, पुत्रैषणा आदि देहधर्म और मनोधर्मकी

ऐषणाओंद्वारा आच्छन्न होते हैं, तब ही विष्णुमाया हमारे निकट तत्तत्फलदात्री देवतारूपसे प्रकाशित होती हैं। श्रीगोविन्दने प्रकृतिसे अतीत नित्य चिच्छक्ति विशेषरूपसे ग्रहण की है। अर्थात् वे सम्बित्-विग्रह हैं। यह हम हमारे जड़ेन्द्रियतर्पणपर जड़धर्म रहते समय उपलब्धि नहीं कर सकते। वे स्वयं अविमिश्र परमानन्द विग्रह (Unceasing Love and Bliss Incarnate) हैं। उनमें कोई मिश्र या केवल-चिद्विपरीत अचित् संयुक्त नहीं हो सकता। हमारे अक्षजज्ञानद्वारा जो वस्तुएँ कुछ कालके लिए 'सत्य' के रूपमें जान पड़ती हैं, वे केवल तात्कालिक सत्यमात्र (Apparent Truth या Local Truth) हैं; वे नित्यसत्यवस्तु (Positive या Absolule Truth) नहीं हो सकतीं। अनादि-कालके विचारसे गोविन्दके आगे कोई भी वस्तु नहीं थी। गोविन्द-सेवाविमुख व्यक्तियोंको दण्ड देनेके लिए ही जड़जगतकी सृष्टि हुई है। अखण्ड काल भी गोविन्दसे ही प्रकटित हुई है। जो मानवज्ञानके अज्ञेय, जड़ीय अनुभवराज्यके अतीत ब्रह्माके अहोरात्र या सम्वत्सर या कल्पादि मात्र भी नहीं है—ऐसा अखण्डकाल भी गोविन्दद्वारा ही प्रकाशित है। कार्य, व्यक्त या परिणामके पितामाता कौन हैं?—कारण कौन है? उसके भी कारण कौन हैं? इत्यादि विषय जब हम लोग अनुसन्धान करते हैं, तब देखते हैं कि श्रीगोविन्द ही ऐसे सर्वकारणकारण हैं। कारणको ही जब हम कार्यके रूपमें उपलब्धि करते हैं, तब देखा जाता है कि सभी कारणोंके कारण वे गोविन्द हैं। यही स्व-स्वरूपका परिचय है।

(२) परस्वरूप

परस्वरूप या परतत्त्वस्वरूप कहनेसे वैकुण्ठ-परव्योमनाथ श्रीविष्णु या नारायणको ही जानना चाहिए। वेदादि सभी शास्त्र विष्णुको ही 'परतत्त्व' के रूपमें कीर्त्तन करते हैं। दिव्यसूरिगण या प्रेमी भक्त लोग नित्यकाल ही अप्राकृत भक्तिलोचनद्वारा विष्णुका परमपद दर्शन करते हैं।

(३) वैभव-रूप

वैभवप्रकाश मूल—नारायण बलदेवप्रभु—हमारे श्रीगोविन्दके ही प्रकाश-मूर्त्ति हैं। वे सभी विषयोंके मूल-कारण-स्वयंरूपके वैभव (Individuality के Propagating Prime Cause) हैं। वे स्वयंरूप भगवान्के सर्वव्यापी कार्यकर्त्ता (All Pervading Functionholder of Personal Godhead) हैं। वे स्वयं प्रकाश हैं। उनकी शरीर कान्ति गौर है—कृष्णसे भिन्न है। कृष्णकी वंशीसे अधिक शब्द करनेके लिए ही वे शिङ्गा धारण करते हैं। 'प्रकाश' अर्थमें तद्वस्तुपरता और 'विलास' अर्थमें उस विषयमें अभिज्ञता, 'प्रभुता' अर्थमें निग्रहानुग्रह-सामर्थ्य, 'विभुता' अर्थमें सर्वालिङ्गन-योग्यता समझनी चाहिए। श्रीबलदेव प्रभु ऐसे गुणविशिष्ट (Fountain Head or Prime Source of

All-embracing, All-pervading, All-extending Energy) हैं। ये सभी परिभाषाएँ परिमित राज्यके भाषाद्वारा आच्छन्न होनेपर भी इनका यथार्थ अर्थ कदापि सम्यक् प्रकारसे समझा नहीं जा सकता। 'विभु' और 'प्रभु' परस्पर अन्योऽन्याश्रित हैं। वैभव-प्रकाशरूपसे जो प्रकाशमान हैं, वे ही विभु हैं। जिनसे वे प्रकाशमान हैं, वे 'प्रभु' हैं। 'विभु' और 'प्रभु' में परस्पर अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध है। 'प्रभु' वासुदेव हैं, 'विभु' संकर्षण हैं। 'विभु' और 'प्रभु' के एकतरफ़ तृतीयदर्शनरूप 'प्रद्युम्न' हैं। 'विभु' और 'प्रभुके' दूसरेतरफ़ चतुर्थदर्शनरूप 'अनिरुद्ध' हैं। द्वारकामें सभी चतुर्व्यूहोंके अंशीस्वरूप—ये आदि चतुर्व्यूह हैं। परव्योम या वैकुण्ठमें उनका ही द्वितीय-प्रकाश द्वितीय चतुर्व्यूह हैं। ये भी आदि चतुर्व्यूहके प्रकाशानुरूप तुरीय और विशुद्ध हैं। कृष्णके विलासमूर्त्ति बलदेव मूल-संकर्षण हैं। परव्योममें उन श्रीबलरामजीके स्वरूपांश ही महासंकर्षण हैं। उनसे ही कारणार्णवशायी महाविष्णुरूपी प्रथम पुरुषावतार हैं। वे राम-नृसिंहादि अवतारके कारण हैं, गोलोक एवं वैकुण्ठके कारण हैं, भूमाके कारण हैं और विश्वके कारण हैं। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके वैभव-विचारमें भ्रान्त व्यक्ति लोग ही ब्रह्माण्डमें विद्ध-वैष्णवके रूपमें परिचित आउल, बाउल, सहजिया, गौरनागरी, आदि अप-सम्प्रदाय हैं।

(४) अन्तर्यामी-रूप

अन्तर्यामी रूप तीन प्रकारके हैं—(क) प्रकृतिके अन्तर्यामी कारणार्णवशायी, (ख) हिरण्यगर्भ या समष्टि जीवके अन्तर्यामी गर्भोदकशायी, (ग) व्यष्टि अर्थात् पृथक्-पृथक् जीवके अन्तर्यामी पुरुष क्षीरोदकशायी या परमात्मा।

(५) अर्चा-रूप

अर्चारूप आठ प्रकारका है—

"शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥"

श्रीगोविन्द अर्चारूपसे अवतीर्ण होते हैं। अतएव जड़बद्ध लोग अर्चाके देह और देहीमें भेदबुद्धि कर वञ्चित होते हैं। Henotheism अर्थात् पञ्चोपासना या चिज्जड़समन्वयवाद पौत्तलिकता या व्युत्पत्तिकी चरम सीमा है। गणदेवता-पूजासे बौद्ध शाक्यसिंह-वाद उत्पन्न हुआ है। 'ललित-विस्तर' ग्रन्थमें तेंतीस कोटि गणदेवताके अन्यतम सर्वश्रेष्ठरूपसे शाक्यसिंहका वर्णन किया गया है। जड़ जगतमें वर्त्तमान समयमें कृष्णज्ञानहीन बद्धजीवगण स्थूल बुद्धिके वशीभूत होकर स्थूल-पूजामें व्यस्त हैं। अधिकांश लोग ही स्थूलवादी (Materialist) हैं अर्थात् चिज्जड़-समन्वयवादी हैं।

भगवानकी अर्चामूर्त्तिकी कृपासे ही जीव सभी प्रकारके बाहरी ज्ञानके कवलसे बच

सकते हैं। वैष्णवोंके साथ सम्बन्धज्ञान-हीन पूजा-वंचित व्यक्ति ही अर्चक है। भगवान्‌की पूजाकी अपेक्षा भक्तोंकी पूजा—श्रीरामचन्द्रजीकी अपेक्षा हनुमानजीकी पूजा बड़ी है। गुरुका उल्लंघन या वैष्णवोंका उल्लंघन कर विष्णुपूजा करनेसे कुछ दिनोंमें ही चिज्जड़निर्भेदवादी, व्युत्पन्न या पौत्तलिक बनना पड़ेगा। 'अर्चन' बाहरी उपचारोंद्वारा तथा 'भजन' भावराज्यमें कीर्त्तनके द्वारा अनुष्ठित होता है। जिन्हें नाम-भजनके यथार्थ ज्ञानकी उपलब्धि नहीं हुई है, वे भगवानके भक्तोंकी पूजाकी परमावश्यकता समझ नहीं सकते।

भगवत्स्वरूपोंका पारस्परिक सम्बन्ध

विष्णु या श्रीकृष्णके पूर्वोक्त पांच स्वरूप—सभी ही समानधर्मा हैं। जिस प्रकार एक मूलदीपसे बहुतसे दीपोंका प्रज्वलन होता है, इनके सम्बन्धमें भी ऐसा ही है। स्वयंरूप श्रीकृष्ण ही मूलदीप स्वरूप हैं। जिस प्रकार प्रथम दीपसे प्रज्वलित द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम आदि जो कोई भी एक दीप समस्त वस्तुओंको जलानेमें समर्थ है, उसी प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम विष्णु-विग्रहके जिस किसी एक स्वरूपके साथ दूसरे विष्णुविग्रहका तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। केवल लीलागत वैचित्र्य भेदमात्र है। किन्तु विष्णुसे विकृत होकर यदि भगवत्-वस्तु प्रकाशित हों, तो ऐसे बहिर्दर्शन को 'आवरण' या 'गुणावतार' जानकर उन्हें विष्णुके साथ समान तत्त्वके रूपमें विचार नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार दूध विकृत होकर दही होने पर दहीको और दूधके साथ समान समझा नहीं जा सकता, इसीप्रकार क्षीरोदकशायी विष्णुतक सभी भगवत्-तत्त्व दूध-तुल्य विष्णु-तत्त्व हैं। दूधको अम्लके संयोगसे विकृत करनेकी चेष्टा अर्थात् जहाँ विष्णुत्वके साथ मनुष्यके काल्पनिक ज्ञान मिलानेकी चेष्टा देखी जाय, वहीं Henotheism या पंचोपासना देखी जाती है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वतीठाकुर

प्रश्नोत्तर

(असत-सम्प्रदाय)

१—भारतीय वेदानुगत्व वेद-विरुद्ध मतवाद, विदेशीय तत्समकक्ष आध्यक्षिक मतवाद और ईशानुगतिवाद क्या-क्या हैं ?

"हमारे देशमें सिद्ध-ज्ञानस्वरूप वेदसम्मत वेदान्त-शास्त्र और तदानुगत्य स्वीकार करके भी वेदार्थ-विपरीत-मत-प्रकाशक न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक और कर्म-मीमांसा रूप असत् शास्त्र तथा वेदविरुद्ध बौद्ध-मत, चार्वाक मत आदि नाना प्रकारके मत प्रकाशित हुए हैं। चीन, ग्रीस, पारस, फ्रान्स, इङ्गलैंड, जर्मनी, इटली आदि देशोंमें जड़वाद (Materialism), स्थिरत्ववाद (Positivism) निरीश्वर कर्मवाद (Secularism), निर्वाण-सुखवाद (Passimism), सन्देहवाद (Scepticism), अद्वैतवाद (सर्वब्रह्म Pantheism), नास्तिक्यवाद (Atheism) रूपी नाना प्रकारके वाद (Ism) स्थापित हुए हैं। युक्ति द्वारा ईश्वर-स्थापनपूर्वक कुछ मत उत्पन्न हुए हैं। श्रद्धालु होकर ईश्वर भजन करना चाहिए—ऐसा एक मत भी जगतमें अनेक स्थानोंमें प्रचारित हुआ है। यह मत किसी किसी स्थानमें केवल श्रद्धामूलकके रूप में माना गया है। किसी किसी देशमें परमेश्वरदत्त धर्म कहकर प्रचारित हुआ है। जहाँ यहकेवलमात्र श्रद्धामूलक माना गया है, वहाँ इसे ईशानुगति-वाद (Theism) कहा गया है। जहाँ इसे ईश्वर दत्त माना गया है, वहाँ ईश्वर-दत्त शास्त्र-मत अर्थात् ईसाई-धर्म Christianity), मुसलमान-धर्म (Mohahedanism) आदि नामोंसे पुकारा जाता है।"

—त० वि० १ म अनु: ३

२—किस-किस धर्मको यथार्थमें विधर्म, छल-धर्म, धर्माभास या अधर्म कहा जा सकता है ?

"जिस स्थलमें नास्तिक्यवाद, सन्देहवाद जड़वाद, अनात्मवाद, स्वभाववाद और निर्वि-शेषवादरूप अनर्थ रहें, भक्त लोग उस धर्मको धर्म न जानकर उसे विधर्म, छलधर्म, धर्मा-भास या अधर्मके रूपमें मानेंगे।"

—चै० शि० ९१९

३—जड़वादियोंका धर्म कैसा है ?

"जड़वादियोंने जिस धर्मका प्रचार किया

है, वह आधाररहित गृहकी तरह पतनशील है।"

--त० वि० १ म अनु: ६।१३

४--भारतीय और अपरदेशीय स्वार्थ और निःस्वार्थ जड़ानन्दवाद और उनका स्वरूप क्या है ?

"जड़ानन्दवादी लोग दो प्रकारके हैं—(१) स्वार्थजड़ानन्दवादी और (२) निस्वार्थ-जड़ानन्दवादी। स्वार्थजड़ानन्दवादियों का कहना है--"जब ईश्वर, आत्मा, परलोक और कर्मफल नहीं हैं, तब इस जागतिक कर्म-फलसे कुछ सावधान रहकर हम लोग अनवरत इन्द्रियसुखका भोग करेंगे। *** भारतवर्षमें चार्वाक-ब्राह्मण, चीन देशमें नास्तिक यांगचू (Yangchoo), ग्रीसमें नास्तिक लुसिपस (Leucippus), मध्य एशियामें सर्डनापेलास (Sardanapalus), रोमदेशमें लुक्रिसियस (Lucrecius) आदि अन्यान्य अनेक देशोंमें अनेकों व्यक्तियोंने इस मतकी पुष्टि करते हुए ग्रन्थ लिखे हैं। वॉन हलबाक् (Van Halbach) का कहना है—"अपना अपना सुखवर्द्धक धर्म ही माननीय है। दूसरेको सुखद्वारा अपनेको सुखी करनेके कौशलको 'धर्म' कहा जा सकता है।' *** ग्रीस देशके प्लेटो (Plato) और अरिष्टाटल (Aristotle) ने परमेश्वरको एक मात्रनित्य-वस्तु और समस्त जगतके एकमात्र मूलके रूपमें नहीं माना है। कणाद-मतस्थ दोष-समूह ही इन सब पण्डितोंके विचारोंमें देखा जाता है। गेसेण्डो (Gassendi) ने परमाणु-वाद स्वीकार करते हुए परमेश्वरको परमाणुओंके सृष्टिकर्त्ता कहकर सिद्धान्त किया है। फ्रान्स देशमें डिडेरो (Diderot) और लामेट्री (La-Mettrie) ने निःस्वार्थ जड़ानन्दवाद प्रचार किया है। निःस्वार्थवादने क्रमशः उन्नत होकर फ्रान्सदेशके कोम्त् (Comte) नामक एक विचारकके ग्रन्थमें सम्पूर्णता प्राप्त किया है। *** उनके अविशुद्ध मतको उन्होंने स्थिरत्ववाद (Positivism) कहा है। नाम नितान्त अमूलक है, क्योंकि उनके मतमें जड़ीय प्रतीति और जड़गत विधिको छोड़कर और कुछ भी नहीं है। इन्द्रियोंको छोड़कर हमारे लिए और कोई ज्ञानद्वार नहीं है। उनका धर्म यही है कि अन्तःकरणवृत्तिकी आलोचनाद्वारा इस वृत्तिको पुष्ट करना मनुष्यका कर्तव्य है। उसकी पुष्टिके लिए काल्पनिक विषयका अवलम्बन कर एक स्त्री-मूर्त्ति की पूजा करनी चाहिये। विषय काल्पनिक होनेपर भी प्रवृत्तिकी चरितार्थता होती है। पृथिवी उनका महत्तत्व (Supreme Fetich) है। देश ही उनका कार्याधार (Supreme Medium) है। मानव-प्रकृति ही उनकी प्रधान सत्ता (Supreme Being) है। हाथमें एक शिशुको धारण किये हुए एक स्त्री-मूर्त्तिकी प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकालके समय पूजा करनी चाहिये। इंगलैण्ड देशके मिल्

(Mill) ने जड़वादको भाववादके रूपमें विचार करते हुए आखिरमें कोम्त् (Comte) के साथ ऐक्यता स्थापन करते हुए निःस्वार्थ जड़ानन्दवादकी ही पुष्टि की है। एक प्रकार का निरीश्वर संसारवाद (Secularism) ने वर्तमान समयमें इङ्गलैण्डके अनेक युवकोंके चित्तको आकर्षण किया है। मिल (Mill), लुइस् (Leuis), पैन (Paine), कारलाइल (Carlyle), बेनथाम (Bentham), कोम्त् (Comte) आदि तार्किक लोग ही इसके प्रवर्त्तक हैं। यह मत दो भागोंमें विभक्त हुआ है। हलियोक् (Holyoake) एक भागके कर्त्ता-विशेष हैं। उन्होंने अनुग्रहपूर्वक कुछ अंशोंमें ईश्वरको माना है। दूसरे विभागके कर्त्ता ब्राड्ला (Brodlaugh) सम्पूर्ण नास्तिक हैं।"

—त० वि० १ म अनु, ५-८

५—निस्वार्थ-जड़ानन्दवादका यथार्थ स्वरूप क्या है ?

"स्वार्थ-जड़ानन्दवादको लोग नामसे जाने जा सकते हैं, किन्तु वस्तुतः विचार करनेपर निःस्वार्थ जड़ानन्दवादी भी स्वार्थवादी ही हैं।"

—त० वि० १ म अनु: ९-१२

६—निःस्वार्थवादियोंका मत क्या अपस्वार्थ रहित है ?

"ईश्वर-संश्रव चातुर्यके कारण निरीश्वर कर्मवाद स्मार्त पण्डितोंके मतमें इतने प्रबल रूपसे भारतमें प्रचलित है। एक व्यक्तिका स्वार्थ दूसरे व्यक्तिके स्वार्थमें व्याघात प्रदान करता है। अतएव सामान्य बुद्धिवाले व्यक्ति निःस्वार्थ नाम सुनकर ही अपने स्वार्थकी प्राप्तिकी आशासे निःस्वार्थवादीके मतमें आदर प्रदान करते हैं।"

—त० वि० १ म अनु: ९-१२

७—पाश्चात्य देशीय पण्डितोंमें कितना मौलिक पाण्डित्य है ?

"पाश्चात्य देशोंमें कुछ थोड़ेसे समयसे ही मानवकी सभ्यता और बुद्धिवृत्तिका परिचय देखा जाता है। उन सब देशोंमें टिण्डल (Tindole), हक्सली (Huxley), डारविन् (Darwin) आदि लोग पण्डित माने जाते हैं। पुरानी बातोंको नई भाषामें कहनेपर जो पाण्डित्य दावी किया जा सकता है, वे लोग वही कर सकते हैं। पांच हजार वर्ष पूर्व श्रीमद्भगवद्गीता आविर्भूत हुई थीं; उसमें आसुरिक प्रवृत्तिके वर्णनमें 'जगदाहुरनीश्वरम्' "अपरस्परसंभूतं" आदि वाक्योंद्वारा स्वभाववाद, क्रमोन्नतिवाद और क्रमोत्पत्तिवाद आदि के बारेमें कहा गया है, जो आसुरी प्रवृत्तिसे उत्पन्न होते हैं।"

—"धर्म और विज्ञान" स० तो ७।७

८—कर्मजड़-स्मार्त्तोंकी प्रायश्चित्तादि व्यवस्थायें क्या कपटता-रहित हैं ?

"किसी स्मार्त्त पण्डितने किसी समय किसी प्रायश्चित्त विषयक जिज्ञासुको चान्द्रा-

यणादि कार्यका उपदेश दिया था। उस समय उस व्यक्तिने बतलाया—"भट्टाचार्य महाशय ! माकड़ (बिल्ली) मारने के लिए यदि मेरे लिए चान्द्रायणकी व्यवस्था की, तो मेरे साथ आपके पुत्र भी इस कार्यमें लिप्त रहनेके कारण उनके लिए भी तो चान्द्रायणकी व्यवस्था है ?' भट्टाचार्यजी बड़े विपत्में पड़ गये। उन्होंने पुस्तकके दो-चार पन्ने उलटकर कहा—"मुझसे भूल हो गया। मैं देखता हूँ कि माकड़ (बिल्ली) मारनेसे धोकड़ होता है। शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है। तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा।" निरीश्वर स्मार्त्तों के कार्य और व्यवस्थाएँ ऐसी ही हैं।"

—त० वि० २ म अनु: ६-१२

६-सन्देहवादकी क्या गति है ?

सन्देहवाद अपने आपको विनष्ट करता है। क्योंकि उसमें असन्दिग्ध (अप्रमाणमूलक) तत्वों को स्वीकार किया है।"

--त० वि० १ म अनु: १६

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

मुरली का प्रभाव

मुरली सबन कौ मन हरचौ।
प्रथमहिं ब्रजनारि सुनि कें आनि गिरधर बरचौ॥
तब नहीं रहि गयौ हम पै, सब्द स्रवनन परचौ।
पिता, सुत, पति, बिसरि अंबर, चलीं तजि गृह भरचौ॥
सिद्ध, चारन, गुनी, गँधरब, सुनत सब बिसरचौ।
मगन मन मारुत न डोलै, सिथिल ससि न टरचौ॥
मोर, मधुप, चकोर, सारस, सबनि यह मत करचौ।
आपनौ ब्रत छाँड़ि बानी, जोग जड़ ब्रत धरचौ॥
निकसि सर्प न दुरत बाँबी, कछु जु बंसी करचौ॥
तोरि तृन मृग सुरभि दसनन दाबि नाहिन चरचौ॥
चतुर कोकिल रही चित दै, करि नँकु न मुरचौ।
ध्यान सौ धरि रहे द्रूम सब नाद उर मैं अरचौ॥
थके थिर चर सुर असुर नर, लए धरनी धरचौ।
सूर प्रभु मुरली अधर धरि, काम नाचत खरचौ॥

(सूरदासजी)

सन्दर्भ-सार

(श्रीभक्तिसन्दर्भ—७)

कामनावश होकर जीव भोगप्रवृत्ति-परायण हो जाता है। जिस अवस्थामें खण्ड-ज्ञानके वशीभूत होकर स्थित है, ऐसी बद्ध अवस्थामें असंख्य खण्ड कामनाओंकी परितृप्तिके लिए यथेच्छाचारी हो पड़ता है। जब विष्णु ही कामके विषय हों, तब इतर वासनाएँ परित्याग कर जीव अकाम या ऐकान्त भक्त हो जाता है। विष्णु-सेवाको छोड़कर दूसरी प्रवृत्तियोंसे निवृत्त होनेका नाम ही मोक्षकाम है। बद्धजीव सङ्कीर्णताके अधीन होकर अपनेको यथेच्छाचारी या यथेच्छाचारत्यागी होनेका अभिमान करता है। जब बुभुक्षु या मुमुक्ष धर्मका परित्याग करें, तब ही जीव अकाम होता है। ऐकान्त भक्त लोग सभी प्रकारके विघ्नोंसे रहित होकर परमपुरुष श्रीहरिकी सेवा करते हैं।

जो व्यक्ति भक्तिको स्वाभाविक अभिधेय-श्रेष्ठके रूपमें नहीं जानते, वे लोग स्वाभाविक विघ्नोंके वशीभूत हैं। जहाँ दृढ़-श्रद्धा या तीव्रता वर्त्तमान है, वहाँ विघ्न नहीं रह सकते। कर्म और ज्ञानके आवरण ही विघ्न हैं। जहाँ केवला भक्ति है, वहाँ स्वाभाविक रूपसे विघ्न दूर हो जाते हैं। शिथिल साधनमें भक्ति ज्ञान और कर्म द्वारा आच्छन्न होनेपर अपना विक्रम प्रकाश नहीं कर पातीं।

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः।
भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः॥

(भा० २।३।११)

जो व्यक्ति दूसरे-दूसरे देवताओंकी आराधना करते हैं, वे लोग यदि वैष्णव-सङ्ग प्राप्त करें, तब वैष्णवोंकी कृपासे उन्हें भगवान्‌के प्रति अचला भक्ति होती है। उसी समय वे सब प्रकारके कल्याणके अधिकारी बनते हैं। भक्ति ही परम निःश्रेयस है। भगवद् भक्तिको छोड़कर दूसरी सभी प्रवृत्तियाँ तुच्छ फल प्रदान करती हैं। किन्तु वैष्णव-सङ्गके द्वारा यदि उन प्रवृत्तियोंकी तुच्छता उपलब्धि हो, तो शुद्धभक्तिके आश्रयसे ऐकान्तिक मङ्गलका आविर्भाव होता है। भगवद् भजनके बिना हम लोगोंका समय वृथा ही बीत जाता है—

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तञ्च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत् क्षणो नीत उत्तमःश्लोकवार्त्तया॥

(भा० २।३।१७)

पूर्व दिशामें उदय होकर सूर्य आकाश-

मण्डलके ऊपर उठकर और नीचे गमन कर मानो मानवोंद्वारा वृथा ही बिताये गये काल-को हरण कर लेते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु जो लोग अपना समय उत्तमःश्लोक हरिकी कथामें बिताते हैं, उन लोगोंका आयु वे हरण नहीं करते। वह समय हरिकथामें व्यतीत होकर सर्वसिद्धि प्रदान करता है।

यदि कहा जाय कि जीवन धारण करनेमें ही अर्थात् श्वासप्रश्वास ग्रहण-त्याग, आहार-बिहार, प्रतिष्ठा-प्राप्ति तथा नेत्र, जिह्वा, नासिका, मस्तक, हाथ-पदादि इन्द्रिय-चालना द्वारा ही जीवनकी सार्थकता है, तो उसके उत्तरमें कहा गया है –

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामे पशवोऽपरे ॥
(भा० २।३।१८)

वृक्ष-लतादि क्या जीवन धारण नहीं करते ? भस्त्रा (लौहारकी धौंकनियाँ) क्या वायु ग्रहण और त्याग (जीवोंकी तरह श्वास-प्रश्वास ग्रहण-त्याग) नहीं करतीं ? इन्द्रिय-चरितार्थता और जीव-धारणादि विषयमें यदि निपुणता और अधिकता देखी जाय, तो वृक्षादि मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक समय जीवित रहते हैं। इतर गाँवके कुत्ते-शूकर आदि पशु क्या आहार-बिहार-मैथुनादि नहीं करते ? मनुष्योंके श्वासप्रश्वास अपेक्षा धौंकनी में अधिक वायु ग्रहण करनेका सामर्थ्य है। दूसरे प्राणियोंकी आहार-बिहारादि विषयमें मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक कुशलता है। ऐसा मनुष्य नराकृति पशुतुल्य कहा गया है—

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।
न यत् कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥
(भा० २।३।१९)

जिसके कानोंमें कदापि कृष्णनामका प्रवेश नहीं हुआ, वह मनुष्य कुत्ते, सूअर, ऊँट और गदहेके समान पशुतुल्य है। वह व्यक्ति कुत्तेकी तरह अकारण क्रोध करता है। शूकरकी तरह अमेध्य विषयरूपी विष्ठा भोजन करता है, अतएव नितान्त अवज्ञाका पात्र है। वह व्यक्ति ऊँटकी तरह काँटेके समान विषयोंके भोगोंमें आसक्त है और गदहेकी तरह वृथाभारवाही और स्त्री-पाद-ताड़ित है। अतएव हरिकथा न सुननेवाला व्यक्ति पशु-धर्मावलम्बी है। कुत्ते आदि पशुतुल्य उसे उसके बन्धु लोग पूजा करनेपर भी वह हरिकथाविहीन मनुष्य उनमें पशु-धर्मकी दृष्टिसे श्रेष्ठ है। इसलिए वह महापशु है। अतएव हरिसेवाविहीन इन्द्रियोंकी निन्दा की गई है—

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत,न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥
(भा० २।३।२०)

हे सूत ! जो सभी मनुष्य अपने कानों-द्वारा श्रीहरिकी कथा नहीं श्रवण करते, उनके कान वृथा छिद्रतुल्य हैं। बेकार गर्त्तोंमें जिस प्रकार साँप प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार

उनके वृथा छिद्ररूप कानमें ग्राम्यवार्त्तारूपी सर्प प्रवेश कर उनके जीवनको अकालमें ही नष्ट करता है। जो जिह्वा हरिगुणगान नहीं करती, वह मेंढ़ककी जिह्वा जैसी है। जिस प्रकार सभी मेंढ़क नये जलको पाकर आनन्द ध्वनि करते-करते उनके शत्रु साँपको बुलाते हैं, उसी प्रकार जो व्यक्ति हरिगुणगान नहीं करता, वह यमराजद्वारा दण्डित किया जाता है। किन्तु हरिकीर्त्तनकारीको यमराज स्पर्श नहीं कर सकते।

भारं परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा॥
(भा० २।३।२१)

जो मस्तक भगवान् मुकुन्दको वन्दना नहीं करता, वह पट्टवस्त्र या किरीट (मुकुट) द्वारा शोभित होनेपर भी शरीरके लिए परम भारके समान है। जिस प्रकार कोई जलमें डूब मरनेकी इच्छा करनेपर गलेमें एक भारी पत्थरका वज़न बाँधकर डूब मरनेपर और उठ नहीं सकता, उसी प्रकार यह व्यक्ति भव-समुद्रमें डूब मरता है, उठनेमें समर्थ नहीं होता। जो हाथ श्रीहरिकी सेवा नहीं करते, वे सोनेके वलय या कङ्कणद्वारा शोभित होने-पर भी सेवा न करनेके कारण मृत-व्यक्तिके हाथके समान हैं।

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥
(भा० २।३।२२)

जो आँखें श्रीहरिकी मूर्त्तिका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरपंखके अग्रभागस्थित आँखोंकी तरह दृष्टिशक्तिरहित हैं। क्योंकि व अपने उद्धार का प्रयास नहीं करतीं। श्रीविग्रहका दर्शन करनेपर संसारसे मुक्ति होती है। जो चरण श्रीहरिके धाम या श्रीहरिमन्दिरमें गमन नहीं करते, वे वृक्षके समान स्थिर या चेतनारहित हैं। वृक्षको यम कुठार या बड़ी कुल्हाड़ीद्वारा काटा जाता है; उसी प्रकार यमदूत अपनी कुल्हाड़ी द्वारा उसके पैर काटते हैं।

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणून् न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥
(भा० २।३।२२)

जो मरणशील व्यक्ति वैष्णवचरणधूलि देहमें धारण नहीं करता, वह जीवन धारण कर भी मृत व्यक्तिके समान है; जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें अर्पित तुलसी-का घ्राण नहीं ग्रहण करता, वह श्वास-प्रश्वास ग्रहण करनेपर भी शवके समान निरर्थक और घृणाका पात्र है।

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रेजलं गात्ररुहेषु हर्षः॥
(भा० २।३।२४)

हरिनाम बारम्बार ग्रहण करनेपर भी जिसका हृदय द्रवीभूत नहीं होता, नेत्रोंमें आँसू नहीं आते, शरीरमें रोमाञ्चका उदय नहीं होता, तो उसका हृदय अत्यन्त कठिन पत्थरसे भी कठिन है। कपटताद्वारा और पिच्छिल (शिथिल) स्वभावके कारण किसी व्यक्तिमें ऐसा बाहरी विकार दीखने पर भी यदि भगवान्‌के प्रेमके कारण द्रवीभूत न हो, तो वह लोहेकी तरह कठिन है।

—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

पूतना-बध

—डा० एस० एल० चतुर्वेदी
एम. ए. पी-एच. डी.

[गताङ्क से आगे]

पहुँची नारि सिंह द्वार
स्तम्भितसे, थकितसे, चकितसे, व्यथितसे
थे, मोहित-विमोहितसे सिंह और पौरिया;
उसके अनूठे रूप-जालमें विंध सारमृगसे
जड़ित हो कह न सके कुछ भी।

नन्द भवन प्रांगणमें,
अंगना अनंग की सी पहुँची व्रजांगना बन,
कंस-कुल-अंकना नन्द वंश-भंजनासी,
अंजित कर निजांगों में कालकूट भंजनेको
यशुमति कुल चन्द्रमा।
देखा नन्द भामिनीने, उचित सत्कार किया,
सुत का दिखाया मुख मानों चन्द्र राका का।

हेरते ही नयन कुन्द उसके कुछ कुन्दित हुए,
झपित हुई आभा रंच मन्द मुसकानकी।
बोली वह बात—महरि पाकर इस बालकको, तुमने
उपलब्धकी है, अलभ्य वस्तु जगकी।
इसके मुख-मण्डल पर मृदुता है, मधुरता है और
मार्तण्डसी प्रखरता समन्वित है।
देखो कैसा यह दीठका दिठौना है, मानो अरविन्द
पर मिलिन्द आन बैठा हो। मेरे अन्तर में उमड़ रहा
रह रह कर, वात्सल्य भाव, महरि, इस बालक प्रति।

"प्यारी मैना तुम बहुत दिनोंमें दीखी हो।
हो तो कुशल, अनामय ? चली आ रही हो कहाँसे तुम ?"
कहकर राम जननीने शिष्टाचार पूर्ण किया।

रह गई चकित लखि उसकी विभा को वह,
आगन्तुका नारी भी मौन ही बनी रही और भूरि
भाग्य निज करने में निरत थी, क्षण-क्षणमें
निहारती थी शोभा व्रज-चन्दको।

एकाएक कार्य वश व्रजपति प्राप-पोषिकाएँ
अन्दर निकेतनमें उठकर चलीं गईं और ब्रह्म
लीला कौतुकमें रोने लगा अति सुकुमार-शावक
व्रज महरि का।

वसुदेव-नन्द-गेहिनीके गेह में जाते ही
मोहन-शिशु सकपकाकर रुदन करने लगा,
औचक ही तार स्वरमें, और कर उच्च निज नन्हें-
नन्हें करोंको, चरणों को उछालने लगा तत्पसे,
मानों ग्रहण करना चाहता हो चन्द्रमा।

शिशुके मेचक कच मुख पर बिखर गये और
कज्जलाम्बु बिन्दु नैनोंसे ठरक पड़ा, मानों मयंक
पर कलंक अंक अंकित हैं और उसे घेरते हैं,
वारिदके टुकड़े कुछ अथवा राहु साथी हों।

बालक का क्रन्दन-करुण, करुणा कर हुआ
कामिनीको और लख साधन अचूक निज सिद्धिका।
सुवासिनीने सत्वर उठा लिया शिशुको।

तभी जघन्य भावनासे भर गया भाव-गृह, ज्ञान-दीप
आप ही बुझने लगा शीघ्र ही।
गृहीत कर कंजोंसे उसके मुखचन्द्रको सत्वर
लगा दिया अपने कुच-कुम्भोंसे। मानों सुधाकरसे शोधन
को शत्रु-भाव, हलाहल विषसे पूर्ण किया जाता हो।

किन्तु सर्वज्ञ, सर्वस्वामी, सर्वतन्त्रीने, कंस-भगिनी
के कुभावको ताड़ लिया और विष आप ही हित कर हुआ उनको
वाचक बताओ कौन सुखी होता है, भगिनी-पति मारकर ।

दुष्टा-बकीका विष उसका प्राप घातक हुआ,
पी लिये आप साथ उसके स्तन्यके ।

इसी प्रकार मारा जाता है मारक पर, निरपराध
बच्चों को, अबलाको मृत्यु का कारण जो बनता स्वार्थ
मय भाव से ।

इस प्रकार मृत्युको प्राप्त हुई नारी वह, वास्तवमें
जो थीं पूतना, पूतना ।

मरते ही उसके विकट परिवर्तन हुआ सारा भेद,
खुलकर प्रत्यक्ष हुआ शीघ्र ही । विकट भयंकर शरीर
हुआ उसका ओर लम्बायमान हो गई वहीं राक्षसी ।

सुनकर शब्द शिशुका और पूतनाका चीत्कार घरसे तुरन्त,
भागी वसुदेव-नन्द-गेहिनी । पार्श्ववर्त्ती घरोंसे भी गोपगण आ गये
और चलने लगी चरचा विचित्र ही ।

यशुमतिने बालकको अंकसे लगा लिया और जल्द
ले गये दुष्टा बकी को झट, तट यमुनाके, करनेको क्रिया उसकी,
पाठक इस भाँति हुआ अन्त कंस भगिनी का ।।

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

षष्ट-वृष्टि—चतुर्थ धारा (नाम-भजन प्रणाली)

[गताङ्क से आगे]

नामतत्त्वविद् गुरुपदाश्रय—

पहलेसे ही जिन सौभाग्यवान पुरुषोंकी कृष्णनाममें अनन्य श्रद्धा होती है, उनके लिए पृथक प्रक्रिया होती है। वे कृष्णकी कृपासे नामतत्त्वविद् गुरुका आश्रय ग्रहण करते हैं।[1] श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने नामतत्त्वविद् गुरुका अधिकार निर्णय कर दिया है।[2] नामतत्त्वमें दीक्षा-गुरुकी आवश्यकता नहीं रहने पर भी नाम तत्त्वगुरु स्वतःसिद्ध हैं। नामाक्षर सर्वत्र ही प्राप्त किये जा सकते हैं; परन्तु उनमें जो निगूढ़ तत्त्व होता है, उसकी उपलब्धि केवल विशुद्ध भक्तगुरुकी कृपासे ही होती है। गुरुकृपासे ही नामाभासदशा दूर होती है तथा नामापराधसे रक्षा होती है।

नामाभास—

नामभजनकारी साधक पुरुष प्रारम्भसे ही मध्यमाधिकारी होता है, क्योंकि उसे नामके स्वरूपका बोध रहता है। साधारणतः उसका नामाभास नहीं होता। ऐसे नामभजनकारी पुरुष ही यथार्थमें प्रेमारुरुक्षु हैं। कृष्णके प्रति प्रेम, शुद्धवैष्णवोंसे मित्रता, कोमलश्रद्ध-वैष्णवोंपर कृपा तथा भगवद् विद्वेषियोंके प्रति उपेक्षा करना ही उनका धर्म-व्यवहार है। कनिष्ठाधिकारीको वैष्णव-तारतम्य-विचारका बोध नहीं रहनेके कारण समय-समय पर उनकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो पड़ती है।[3] मध्यमाधिकारी प्रेमारुरुक्षु भक्त त्रिविध वैष्णवोंके प्रति त्रिविध व्यवहारद्वारा अति

---

१. वैष्णव ज्ञानवक्तारं यो विद्याद्विष्णुव.गुरुम्। पूजयेद्वात्मनः कायैः स शास्त्रज्ञः स वैष्णवः॥
श्लोकपादस्य वक्ताऽपि यः पूज्यः स सदैवहि। किं पुनर्भगवद्विष्णोः स्वरूपं वितनोति यः॥
स्वरूपमत्र नामरूपगुणलीलात्मकं भगवत्स्वरूपं चिन्मयम्।

२. क, किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय। जेइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥
(चैं० चं० म० ८।१२७)

[ख] आकृष्टिः कृतचेतसां सुमनसामुद्घाटनं चांहसा, माचाण्डालममूकलोकसुलभो वश्याश्च मुक्तिश्रियः।
नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यामनागीक्षते, मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥
—(श्रीधर स्वामी)

३. अर्चायामेव हरये यः पूजां श्रद्धयेहते। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥
(भ० ११।२।४७)

शीघ्र ही प्रेमारूढ़ या उत्तम भक्त हो जाते हैं।[1] मध्यमाधिकारी भक्त ही सत्संगके योग्य होते हैं।

प्रेमारुरुक्षु मध्यमाधिकारी भक्त नाम-संख्या बढ़ाते-बढ़ाते दिनरातमें तीन लाख नाम करते हैं। नाममें इतना आनन्द होता है कि वे नाम किये बिना रह ही नहीं सकते। शयन आदिके समय संख्यानाम नहीं हो सकता इसलिए अन्तमें असंख्य नाम करते हैं। श्रीगोपालगुरु गोस्वामीने श्रीनामके जिस प्रकारसे अर्थ प्रकाशित किये हैं, उसीप्रकारसे अर्थ-भावना करते-करते नर-स्वभावके जो अनर्थसमूह हैं, उनका क्रमशः उपशम होकर नामके परमानन्दमय स्वरूपका साक्षात्कार हुआ करता है।[2] नामका स्वरूप स्पष्टरूपसे उदित होनेपर कृष्णका चिन्मयरूप नामके साथ मिलकर एक रूपमें ही उदित होते हैं। उक्त मिलित रूप नाम-भजनके साथ जितने ही शुद्धरूपमें उदित होता जायगा, उतने ही रूपमें सत्त्व, रजः और तमोगुण चित्तसे दूर होकर शुद्ध सत्त्व अर्थात् अप्राकृत कृष्णगुण-समूह उदित होते जायेंगे। फिर नाम, रूप और गुण—इन तीनोंके ऐक्यद्वारा जितना ही विशुद्ध भजन होगा, सहज समाधियोगद्वारा निर्मल हुए चित्तपर कृष्णकी कृपासे उतनी ही अधिक रूपमें कृष्णलीलाकी स्फूर्ति होगी। संख्यायुक्त या असंख्य नाम जिह्वापर कीर्तित होता है, मनश्चक्षुसे कृष्णका रूप दृष्टिगोचर होता है, चित्तमें कृष्णके गुणोंकी स्फूर्त्ति होती है एवं समाधिस्थ आत्माके सम्मुख कृष्ण-लीला प्रस्फुटित होती है।[3] इस प्रक्रियामें साधकोंकी पाँच दशाएँ परिलक्षित होती हैं।

साधकोंकी पाँच दशाएँ

(१) श्रवण दशा, (२) वरण दशा, (३) स्मरण दशा, (४) आपन दशा, और (५) प्रापन दशा।

१—ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च। प्रेममैत्रीकृपोपेक्षाः यः करोति स मध्यमः॥
(भा० ११।२।४६

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत, दीक्षास्तिचेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।
शुश्रूषया भजनविज्ञमनन्यमन्य निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसङ्गलब्ध्या॥ उपदेशामृत

२—यत्तत्त्वं श्रीविग्रहरूपेण चक्षुरादावुदयते तदेव नामरूपेण वागादाविति स्थितम्। तस्मान्नामनामिनोः स्वरूपाभेदेन तत्साक्षात्कारे तत्साक्षात्कार एव।—भगवत् सन्दर्भ।

३—प्रथमं नाम्नः श्रवणमन्तःकरणशुद्ध्यर्थमपेक्षं शुद्धे चान्तःकरणे रूपश्रवणेन तदुभययोग्यता भवति। सम्यगुदिते रूपे गुणानां स्फुरणं सम्पाद्यते। ततस्तेषु नामरूपगुणस्फुरितेष्वेव लीलानां स्फुरणं भवतीत्यभिप्रेत्य साधनक्रमो लिखितः। एव कीर्तन-स्मरणयोश्च ज्ञेयम्।— भक्तिसन्दर्भ

(१) श्रवण-दशा—

सुयोग्य गुरुके समीप साधन और साध्य-के विषयमें जो श्रवण किया जाता है, उस समय जो सुखमय दशा होती है, उसे श्रवण-दशा कहते हैं। नामापराधरहित होकर नाम-ग्रहणके सम्बन्धमें जितनी भी बातें हैं,[1] और नाम-ग्रहणकी प्रणाली तथा योग्यता आदि सब कुछ श्रवणदशामें ही प्राप्त होता है। उसीसे नामकी नैरन्तर्यसिद्धि उदित होती है।

(२) वरण-दशा—

योग्य होने पर श्रीगुरुदेवमें नाम-प्रेम-ग्रथित माला पायी जाती है, अर्थात् शिष्य परम संतोषपूर्वक श्रीगुरुके चरणकमलोंके समीप शुद्धभजन-अङ्गीकार रूप वरणदशाको ग्रहण करता है और श्रीगुरुदेवद्वारा शक्ति-संचारको प्राप्त होता है। इसीका नाम वरण-दशा है।

(३) स्मरण-दशा और (४) साधन दशा—

स्मरण, ध्यान, धारणा, ध्रुवानुस्मृति और समाधि—ये पाँच नाम-स्मरणकी प्रक्रियाएँ हैं। नामस्मरण, रूपस्मरण, गुण-धारणा, लीलाकी ध्रुवानुस्मृति और लीला-प्रवेश करने पर कृष्ण-रस आस्वादन रूप समाधि—इन सारे क्रमोंके होनेपर आपन-दशा उपस्थित होती है। स्मरण और आपनमें अष्टकाल कृष्णकी नित्य लीला साधित होती है और उसमें प्रगाढ़ अभिनिवेश होनेपर स्वरूपसिद्धि होती है। स्वरूपसिद्ध भक्तजन ही—सहज परमहंस हैं।[2]

१—एवं नामान्वितो विद्वान् श्रवणादिदशाक्रमात्। लभेत् कृपाबलाद्विष्णोर्वस्तुसिद्धिं सतां पराम्॥
सुयोग्यदेशिकाद् यद्यत् साध्यस्य साधनस्य च। तत्त्वादिश्रवणं तद्धि श्रवणं कीर्त्यते बुधैः॥
साध्य-साधनयोः श्रुत्वा तत्त्वमात्मनिवेदनम्। श्रीगुरोश्चरणे यत्तु तदेव वरणं स्मृतम्॥
स्मृतिर्ध्यानधारणा च ध्रुवानुस्मृतिरेव हि। समाधिरिति नामादेः स्मरणं पञ्चधा स्मृतम्॥
स्वरूपसिद्धिमापन्नं स्मरणं ह्यापनं भवेत्। तथापि वर्त्तते देहे स्थूललिंगस्वरूपकम्॥
यदा कृष्णेच्छया लिंगभंगरेव भवेत् किल। तदा तु वस्तुसम्पत्तिसिद्धिरेवसुनिर्मला॥
— श्रीध्यानचन्द्रः

२—यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम्॥ (भा० १२।१४।२६)

(५) प्रापन-दशा—

तदनन्तर कृष्णकी कृपासे शरीर-त्याग होनेपर वस्तुतः सिद्धदेहसे व्रजलीलाका परिकर होनेका नाम ही वस्तु-सिद्धि है। यही नाम-भजनका चरम फल है।

क्या प्रेमारुरुक्षु सभी साधकोंको गृहस्थाश्रमका त्याग कर संन्यास-ग्रहण नितांत आवश्यक है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम इनमें से जो आश्रम उस समय प्रेमारुरुक्षु व्यक्तिको प्रेम साधनके लिये अनुकूल जान पड़े, उसी आश्रममें रहकर उन्हें भजन करना चाहिए। और जो आश्रम भजनके प्रतिकूल जान पड़े, उसी समय उस आश्रमका त्याग कर देना चाहिए।[३] श्रीवास पण्डित, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीराय रामानन्द आदि भगवद्-पार्षदोंके चरित्र आलोचनीय हैं। वे सभी सहज परमहंस थे। प्राचीनकालमें भी गृहस्थ आश्रममें ऋभु आदि अनेकों परमहंसोंका विवरण प्राप्त होता है। दूसरी ओर गृहस्थाश्रमको भजनके प्रतिकूल जानकर श्रीरामानुजस्वामी, श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी, श्रीमाधवेन्द्रपुरीगोस्वामी, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि महाजनोंने उसका त्याग करके संन्यासाश्रम ग्रहण किया था।

२—मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥ (भा० ११।२९।३४)
एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥ (भा० ८।३।२०)
इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमःश्लोकगुणानुवर्णनम्॥ (भा० १।५।२२)

३—भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते-सहषट्सपत्नः।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम्॥ (भा० ५।१।१७)

हरिभजन नहीं हुआ !

मेरा हरिभजन नहीं हुआ । हृदयताकी कपटता नहीं गई; मेरे देह, इन्द्रिय, मन आदि सभी कुछ ही मेरे प्रतिकूल हो गये हैं । मेरी इन्द्रियाँ सेवोन्मुख नहीं हुईं, इसलिए मैं सद्गुरु और शुद्ध वैष्णवोंका अयाचित सङ्ग प्राप्त करके भी मैं उनका सङ्ग नहीं कर सका। भोगोन्मुख कर्णोंमें उनका शुद्ध कीर्त्तन प्रवेश नहीं कर पाया । उनके द्वारा कीर्तित भगवन्नाम मेरी रसनामें उदित नहीं हुआ । हरिभजनमें मुझे उत्साह नहीं है; हरिभजन ही मेरा नित्य धर्म है, इसमें मुझे निश्चयता नहीं है । सेवाकार्यमें धीरज नहीं है, श्रीगुरु-वैष्णवोंका महान् आदर्श देखकर भी उनके आचारोंको अनुसरण करनेकी रुचि नहीं है। दुःसङ्ग परित्याग करनेका यत्न या दृढ़ संकल्प नहीं है । साधु लोगोंकी वृत्तिका अनुसरण करनेका आग्रह नहीं है । इन सब कारणोंसे मेरा दुर्भाग्य दूर नहीं हुआ । मेरे तरह और कोई दुर्भागा नहीं है, मैं कुत्तेसे भी गया-बीता हूँ—कुत्ता अमेध्य वस्तुएँ खाता है और मैं मनुष्यका परिचय देकर, भक्तका वेश बनाकर गुरु-वैष्णवोंके उच्छिष्टके प्रति सेवाबुद्धि न रखते हुए कृष्णवस्तुमें भोगबुद्धि परायण हूँ। मेरी लालसा-परितृप्तिके उपयुक्त वस्तुएँ प्राप्त करनेपर मैं गुरु-वैष्णवोंके उच्छिष्टके प्रति अनुराग दिखाया करता हूँ । किन्तु मैं अपने प्रभुके आचरणके आदर्शको हृदयमें एकबार भी स्थान नहीं देता । मैंने अपने आँखोंसे देखा है कि श्रील प्रभुपादजीने महाप्रसादका चिन्मयत्व दिखलानेके लिए श्रीमायापुरमें श्रीगौरजन्मोत्सवके समय सभीके द्वारा परित्यक्त उच्छिष्टको कुत्ते द्वारा भक्षण करके चले जानेके पश्चात् उसीको ग्रहण किया था। यह आचरण प्रत्यक्ष देखकर भी मैं महाप्रसादमें भोगबुद्धि करता हूँ । महाप्रसादको "यथा विष्णुस्तथैव तत्" ऐसा मैं समझ नहीं सका। मेरी प्राकृत बुद्धि दूर नहीं हुई । मैं कनिष्ठाधिकारसे क्रमशः ऊपर उठकर उन्नत अधिकार प्राप्त नहीं कर सका । वैष्णवोंमें सर्वदा ही मेरी प्राकृत बुद्धि है। श्रीगुरुदेवका दर्शन मैं सर्वदा ही मर्त्यबुद्धिसे करता हूँ। मैं भगवान्के मन्दिरमें प्रवेश कर मेरी 'काठके ठाकुर', 'मिट्टीके ठाकुर' बुद्धिको लेकर, वैष्णव सजकर, विष्णुपूजा करने जाकर शक्ति-पूजा कर बैठता हूँ और प्राकृत-शाक्त हो पड़ता हूँ। मेरा घन्टा बजाना ही सार हुआ । अधोक्षज विष्णु मेरी इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य वस्तु-विशेष नहीं हैं, मेरी

भोगोन्मुख इन्द्रियोंकी प्राकृत चेष्टाद्वारा उनके निकट पहुँच नहीं सकता ।

मैं तुलसीजीको पत्तामात्र, गङ्गाजीको मेरे इन्द्रियतर्पणके अर्थात् मेरे पापस्खालन या पुण्यार्जन करनेकी वस्तुमात्र समझता हूँ । सभी लोग मुझे 'भक्त' कहेंगे, इसी आशासे मैं तीनों सन्ध्या गङ्गास्नान करता हूँ । मैं कपटतापूर्वक भावघरमें चोरी कर निर्जनताका आश्रय ग्रहण करता हूँ; मैं दूसरोंको झूठमूठ दिखलाता हूँ कि मैं निर्जन भजनानन्दी हूँ, किन्तु यथार्थमें अपने मनोधर्मके अनलमें जल-भुनकर मरता हूँ । अतएव मेरा हरिभजन नहीं हो रहा ।

यदि वास्तवमें मेरा हरिभजन होता, तो मेरे हृदयमें "श्रीचैतन्यचन्द्रकी दया" और सत् सिद्धान्तादि प्रस्फुटित होते एवं मेरे जीवनको सौगन्धपूर्ण कर देते । मेरा कुरूप दूर होकर मैं सुरूपवान बन जाता । मेरे हृदय के कुसंस्काररूप अमंगल-समूह दूर होकर उस स्थानमें भक्तिलताबीजका अंकुर होता । रूपानुग वैष्णव लोग मेरा कुरूप या कुदर्शन देखकर मेरे प्रति उदासीन नहीं होते । मेरे सेवासौन्दर्यका दर्शन कर मुझे राधागोविन्दके पादपद्मोंमें अर्पण करनेके लिए मेरे प्रति कृपा-दृष्टि कर मुझे उनके अनुगत और अनुपाल्य तथा आश्रित-वर्गमें स्थान देते ।

किन्तु मेरे दुर्भाग्यके कारण मेरा हरिभजन नहीं हुआ । मैं किसी समय कर्मबुद्धि लेकर शारीरिक परिश्रम करता हूँ, कभी मानसिक इन्द्रियकी चालना कर मैं बहुत सेवा करता हूँ-- ऐसा सोचता हूँ । कभी ऐसा भी सोचता हूँ कि जब मुझे वैष्णवोंद्वारा लाये गये भिक्षान्न को ग्रहण करना पड़ता है, तब उसके अनुसार कुछ परिश्रम न करनेसे शायद वैष्णव लोग मुझे अन्न नहीं देंगे । कभी-कभी यह सोचता हूँ कि अधिक परिश्रमशीलता दिखलाने पर वे लोग मेरा अधिक आदर कर मुझे अधिक परिमाणमें चर्व्य-चूष्य-लेह्य-पेय आदि द्रव्य प्रदान करेंगे । इस प्रकार वैष्णवोंका प्रसादान्न पाकर मेरा जीवन व्यतीत हो जायगा । किन्तु मैं क्या कर रहा हूँ, कहांसे आया हूँ, वैष्णवोंके सङ्गसे मुझे कितना लाभ हुआ है, पर-उपदेशमें पाण्डित्य प्रकाश न कर अपने जीवनमें हरि गुरु-वैष्णवोंका आदर्श कितना प्रतिफलित हुआ है, मेरे हृदयमें भजन-के साथ-साथ भजनीय वस्तुके सम्बन्धमें सत्-सिद्धान्त आदि कितने परिमाणमें पल्लवित-पुष्पित हुए हैं—इन सब बातोंका बिलकुल अनुसन्धान नहीं करता । दिन और रात बीत जाते हैं और पुनः नये दिनका आगमन होता है, किन्तु मेरे हरिभजनमें लेशमात्र भी उन्नति नहीं हुई । हाय ! मैं ऐसे हरिभजनके योग्य दुर्लभ जन्म, हरिभजनका उपयोगी देह, गुरु-कर्णधार, नित्य-प्रवाहित भगवत्कृपारूप अनुकूल वायु आदि प्राप्त होकर भी उन्हें मैंने अपने हरिभजनके प्रतिकूल कर बैठा हूँ । मेरा शरीर हरिभजनमें न लगकर मायाके भजन

और इन्द्रियतर्पण करनेमें ही व्यस्त है । मैंने गुरुपादपद्मका परित्याग कर कामक्रोधादि रिपुओंको अपने प्रभुके रूपमें वरण कर लिया है। किन्तु आखिरी श्वांस तक उनकी आज्ञा पालन करनेपर भी वे मेरे प्रति एकबार भी कृपाकटाक्ष निक्षेप करनेके लिए राजी न हुए; किन्तु मैं इतना निर्लज्ज और निर्घृण्य हूँ कि मैं फिर भी उनका दास्य करनेके लिए ही लालायित हूँ। मेरा भजन 'लोक देखान' या दिखावटी भजन है । दो नावोंमें पैर देनेकी प्रवृत्ति नहीं गई । दुर्जनोंके प्रति आत्मीय परिजन बुद्धि है और वैष्णवोंके प्रति परबुद्धि है। जिस दिन मेरा दुःसङ्गके प्रति अनादर, गौर-विरोधी अपने प्रिय व्यक्तिके प्रति भी परबुद्धि, सद्गुरु और वैष्णवोंके प्रति अपनापन और स्वाभाविक आसक्ति होगी, उसी दिनसे मेरा हरिभजन होगा । अतएव श्रीप्रह्लाद महाराज कहते हैं—

"या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः स मे हृदयान्नापसर्पतु ॥"

(विष्णुपुराण १०।२०।२०)

—'साप्ताहिक गौड़ीय' से उद्धृत

★●★

भजो मन ! नन्दनन्दनचरन

भजि मन । नन्द-नन्दन-चरन ।
परम पंकज अति मनोहर, सकल सुखके करन ॥
सनक संकर ध्यान धारत निगम आगम बरन ।
सेस, सारद, रिषय नारद, संत चिंतन सरन ॥
पद-पराग-प्रताप दुर्लभ, रमा की हित-करन ।
परसि गंगा भई पावन, तिहूँ पुर धन धरन ॥
चित्त चिंतन करत जग-अघ हरत तारन-तरन ।
गए तरि लै नाम केते, पतित, हरि-पुर-धरन ॥
जासु पद-रज-परस गौतम-नारि-गति-उद्धरन ।
जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर-धरन ॥
कृष्ण-पद-मकरन्द पावन, और नहिं सरबरन ।
सूर भजि चरनारबिंदनि मिटै जीवन-मरन ॥

(सूरदासजी)